

प्रवचन नं. ६८ गाथा-१४ दिनाङ्क २५-०८-१९७८ शुक्रवार
श्रावण कृष्ण ७, वीर निर्वाण संवत् २५०४

समयसार, १४ वीं गाथा। पहले यह कहा है कि जो आत्मा है, अबद्ध है, राग के साथ जो बंध दिखता है, वह पर्यायनय का — व्यवहारनय का विषय है परन्तु यह अन्दर स्वरूप है, वह तो अबद्ध है। निरावरण, अखण्ड, एक, अविनाशी, परम पारिणामिक परमभाव लक्षण, निज परमात्मद्रव्य, वह एकरूप वस्तु है, वह अबद्ध है। आहाहा! उस पर दृष्टि लगाना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! पाँच बोल तो क्रम से समझायेंगे। वहाँ पाँच बोल क्रम नहीं पड़ता। क्या कहा? पाँच बोल — अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियतं, अविशेषं, असंयुक्तम् — ये पाँच बोल तो क्रम से समझाते हैं, परन्तु जब अन्दर सम्यग्दर्शन होता है, तब एक साथ ही पाँच का अभाव अन्दर बद्ध आदि का अभाव होता है।

कर्म का सम्बन्ध बन्ध; अन्य-अन्य गति जो नारकी आदि दिखती है, वह भी अन्तर में अबद्ध दृष्टि, दृष्टि होने पर सब अनेकपने का अभूतार्थ होता है और एक स्वरूप पर दृष्टि देने से वह निश्चय भूतार्थ है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इससे पहले अबद्ध का दृष्टान्त दिया — कमलिनी का (दृष्टान्त दिया)।

दूसरा मिट्टी का दृष्टान्त — मिट्टी में जो घड़ा, झारी आदि पर्याय होती हैं, वह है, परन्तु मिट्टी का स्वभाव एकरूप देखने से वह सब पर्याय अभूतार्थ है। यह तो दृष्टान्त हुआ। सिद्धान्त, है? इसी प्रकार आत्मा का.... भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप ध्रुव का, नारक आदि पर्यायों से अनुभव करने पर.... गति नरक है, मनुष्य है, देव है, तिर्यच है — ऐसी गति की पर्याय से देखो तो अनेकपना दिखता है, यह पर्यायनय का विषय है, परन्तु उसे देखने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! नारक आदि पर्यायों से 'अनुभव' शब्द से ज्ञान करने से, अनुभव अर्थात् ज्ञान / जानना; ज्ञान करने पर पर्यायों से अन्य-अन्य रूप से.... नरक गति, तिर्यच गति, मनुष्य गति, देव गति, अन्य-अन्य है। इस अपेक्षा से सत्य है।

तथापि.... तो भी आहाहा! सर्वतः अस्खलित.... भगवान ज्ञायकदेव स्वरूप अपने स्वभाव से गति में स्खलित नहीं हुआ है। आहाहा! त्रिकाल सदा निरावरण भगवान

आत्मा अपने स्वभाव से कभी स्खलित (नहीं हुआ है), गति आदि में नहीं आया है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है भाई! यह बात करना.... बोलना वह कोई दूसरी चीज है। आहा!

नरकगति, मनुष्यगति, देवगति, तिर्यचगति, एकेन्द्रिय, द्वेन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, पर्यायनय से देखो तो यह अनेकपना है परन्तु वह तो वर्तमान एक अंश की दृष्टि से देखने से व्यवहार है। वह भी व्यवहारनय, परन्तु वह बात त्रिकाल सत्य नहीं है, वह चीज आत्मा में त्रिकाल टिक सके — ऐसी चीज नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा अपना सर्वतः अस्खलित चिद्घन ध्रुव ज्ञायकभाव, वह अपने स्वभाव से कहीं स्खलित (होकर) किसी गति में नहीं आया। आहाहा! समझ में आया?

सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित्मात्र भेदरूप न होनेवाले.... वस्तु जो द्रव्यस्वभाव है, वह नरकगति आदि में किञ्चित् भी अन्यत्व नहीं हुआ है। अर..र...! यह तो पर्याय में अन्यत्व है। आहाहा! सूक्ष्म विषय है! सम्यग्दर्शन और उसका विषय (बहुत सूक्ष्म है)। सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प दृष्टि है और उसका विषय सर्वतः अस्खलित चिद्घन ध्रुवस्वभाव जो कभी अपने स्वभाव में से गति की पर्याय में नहीं आया, जो ऐसी चीज है। आहाहा!

सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित्मात्र भेदरूप न होनेवाले.... आहाहा! नरकगति या मनुष्यगति आदि हुई, परन्तु अपना त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव से किञ्चित् भी गति में भेदरूप नहीं हुआ। आहाहा! अब यह चीज अभी समझना कठिन पड़े, उसकी प्राप्ति करना... (वह तो) अपूर्व पुरुषार्थ है, भाई! आहाहा! और प्रथम कर्तव्य तो वही है। आहाहा!

सर्वतः अस्खलित.... सर्व पर्यायों में,... अस्खलित का अर्थ किया किञ्चित्मात्र भी अन्यरूप से नहीं हुआ। आहाहा! है? **अन्यत्व अभूतार्थ है...** किञ्चित्मात्र भेदरूप नहीं होना। आहाहा! गति अर्थात् यह मनुष्य शरीर नहीं, अन्दर मनुष्य की गति का उदय जो गतिपना है, नामकर्म का निमित्त है और जो गतिपना है, उस पर्याय में ज्ञायकभाव त्रिकाली शुद्ध चैतन्य, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, वह अपने स्वभाव में से अस्खलितपना — कभी गति की पर्याय में आया नहीं है। आहाहा!

कितने ही कहते हैं न कि मनुष्य की गति हो तो केवलज्ञान होता है। मनुष्यगति में

केवलज्ञान होता है परन्तु वह बात झूठ है। आहाहा! अपना अकेला ज्ञायक ध्रुव अस्खलित, जो गति की — किसी भी गति की पर्याय में ध्रुव ज्ञायकस्वभाव नहीं आया। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है और उसके आश्रय से चारित्र होता है और उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है। किसी संहनन से, मनुष्यपने से केवलज्ञान होता है — ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

बापू! सत्य वस्तु बहुत दुर्लभ है। आहाहा! **सर्वतः अस्खलित....** चार गति में से — एकेन्द्रिय, द्वेन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव, नारकी आदि पर्याय में आया, परन्तु वह वस्तुस्वभाव पर्याय में कभी नहीं आया। आहाहा! एक ध्रुवस्वरूप, एकरूप सदृशस्वरूप, नित्यानन्द प्रभु अपने स्वभाव में से किञ्चित्मात्र गति में स्खलित नहीं हुआ है। आहाहा! समझ में आया ?

वह **एक चैतन्याकार आत्मस्वभाव के समीप जाकर....** क्या कहते हैं ? गति की पर्याय के समीप जाकर उस पर्याय का ज्ञान होता है और वह मैं हूँ — (ऐसा मानना) वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह पर्याय - गति की पर्याय है, उसकी समीपता से दूर होकर (अर्थात्) पर्यायबुद्धि में से निकलकर, आहाहा! आत्मा जो ज्ञायक चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु है, उसके समीप जाकर **अनुभव करने पर....** त्रिकाली ज्ञायकभाव के समीप अर्थात् दृष्टि करने से, उसका स्वीकार और सत्कार करने से, उसका अनुभव करने से... आहाहा! ऐसा है प्रभु! **अन्यत्व अभूतार्थ है....** यह अन्य-अन्य गति जो पर्याय है, वह झूठ है। पर्याय, पर्यायरूप से है परन्तु स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से पर्याय झूठ है। झूठ है अर्थात् पर्याय नहीं थी — ऐसा नहीं है। (पर्याय) है तो सही, परन्तु वह व्यवहारनय का — खण्ड-खण्ड का ज्ञान करने का विषय है। आहाहा! और भगवान आत्मा ज्ञायक अस्खलित चैतन्यस्वरूप अनादि-अनन्त एकरूप रहनेवाली चीज, उस अभेद पर दृष्टि करने से वह पर्याय के भेद भी झूठे हैं। आहाहा!

श्रोता : पर्याय के भेद झूठे हैं अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद, वह दृष्टि का विषय नहीं है। अतः पर्याय गौण करके उसे झूठा कह दिया है। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! धर्म चीज कोई अलौकिक है। आहाहा!

इस पर्याय की दृष्टि से द्रव्यदृष्टि नहीं होती, पर्याय के लक्ष्य से द्रव्यदृष्टि नहीं होती। इसी अपेक्षा से द्रव्य अर्थात् ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप के समीप जाकर अर्थात् उसका सत्कार, स्वीकार करने से और त्रिकाली ज्ञायकभाव के सन्मुख होने से अनुभव करने पर वह पर्याय का भेद गौण हो गया है; अतः वह अभूतार्थ है। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

श्रोता : पर्याय के भेद तो ज्ञान में आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाद में भेदज्ञान में दर्शन हुआ, उसके साथ जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान स्व को भी जानता है और पर्याय के भेद को भी जानता है। बाद में जानने में दो हैं परन्तु सम्यग्दर्शन में दो, दृष्टि के विषय में (दो) नहीं हैं। अरे! ऐसी बात है भाई! आहाहा! समझ में आया ?

यह चैतन्याकार, एक चैतन्याकार, एक चैतन्यस्वरूप स्वभाव, एक चैतन्यस्वभावरूप आत्मस्वभाव, अथवा चैतन्यस्वरूपरूप आत्मस्वभाव.... आहाहा! उसके समीप जाने पर — अनुभव करने पर यह अन्यत्व झूठा है। अन्य — अन्यपना झूठा है; भगवान तो अनन्य है; अन्यत्व, अन्यत्व में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया ? गति आदि की पर्याय अन्य-अन्य है, उसमें अनन्य प्रभु अन्यत्व में नहीं आता। अरे! यह क्या है, यह बात! कहते हैं।

अभी मूल चीज और मूल चीज का विषय, पूरी बात में मानो फेरफार हो गया है। यह करो और वह करो, यह करो और शास्त्र पढ़ो, शास्त्र पढ़ो और भक्ति करो, पूजा करो, व्रत करो, तप करो, और.... आहाहा! भाई! तुझे पता नहीं, प्रभु! यह सब क्रिया का विकल्प है, वह तो राग है और राग से प्रभु तो अबन्ध है, राग से सम्बन्ध अर्थात् बन्ध नहीं है। स्वभाव में राग का सम्बन्ध, सम्बन्ध (नहीं है)। समझ में आया ? क्या कहा ? कि भगवान ज्ञायकस्वभाव एकरूप चैतन्यस्वरूप आत्मस्वभाव की दृष्टि करने से गति जो अन्य-अन्य है, वह उसमें नहीं। उसमें नहीं, इस अपेक्षा से उसे असत्यार्थ कहा गया है। समझ में आया ?

पहले एक बार कहा था कि स्वद्रव्य की अपेक्षा से अन्य द्रव्य अद्रव्य है। क्या कहा ? स्व आत्मा है, स्वद्रव्य; स्वद्रव्य अपनेरूप है, परद्रव्य से नहीं है और परद्रव्य,

परद्रव्य से है, अपने द्रव्य से नहीं है — तो इसका अर्थ क्या हुआ ? पहली चौभंगी.... सप्तभंगी में... अपने द्रव्य की अपेक्षा से अपने में है परन्तु अपने द्रव्य की अपेक्षा से दूसरा द्रव्य अद्रव्य है। आहाहा! उसकी अपेक्षा से द्रव्य है परन्तु इस द्रव्य की अपेक्षा से अद्रव्य है। आहाहा! और इस क्षेत्र से असंख्यप्रदेशी भगवान आत्मा, वह स्वक्षेत्र की अपेक्षा से अपना है और अपनी अपेक्षा से दूसरे का असंख्यप्रदेशी क्षेत्र जीव का और परमाणु का एक प्रदेशी क्षेत्र, वह अक्षेत्र है। अरे ऐसी बातें अब! आकाश भी इस स्वक्षेत्र की अपेक्षा से अक्षेत्र है। चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं बापू! क्या हो ? वस्तु की स्थिति (ऐसी है)।

श्रोता : आकाश तो बहुत बड़ा क्षेत्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बड़ा क्षेत्र है (वह) उसमें है, इस क्षेत्र की अपेक्षा से तो अक्षेत्र है। उसके क्षेत्र की अपेक्षा से क्षेत्र हो। समझ में आया ? ऐसी बात ! बापू ! भगवन्त ! तेरी चीज ऐसी कोई है, वह उसकी लीला पर्याय में अनेकता दिखती है परन्तु वह वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। आहाहा !

इसी प्रकार काल की अपेक्षा से अपनी पर्याय के स्वकाल की अपेक्षा से अपना अपने में है और अपने पर्याय के स्वकाल की अपेक्षा से दूसरी पर्याय का काल परकाल है। आहाहा ! और इससे सूक्ष्म ले जाये तो त्रिकाली ज्ञायकभाव वह स्वकाल की अपेक्षा से अपना है और अपनी पर्याय की अपेक्षा से परकाल है, वह अपने में नहीं। समझ में आया ? यह यहाँ कहते हैं कि परकाल जो गति आदि है, हो; अपने द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से वह नहीं है। उसकी अपेक्षा से वह है। आहाहा ! यह जैनदर्शन बापू ! बहुत सूक्ष्म भाई ! आहाहा ! यह कोई पण्डिताई का — विद्वतता का विषय नहीं है, यह तो अन्तर्दृष्टि का विषय है। आहाहा !

हजार योजन का मच्छ-तिर्यच भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, क्या जानपना था ? अस्खलित चैतन्यद्रव्य ज्ञायक ध्रुवस्वभाव की दृष्टि करने से वह सत्य है और पर्याय है, इस अपेक्षा से वह असत्य है। उसकी अपेक्षा से सत्य है; अपने द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से असत्य है। आहाहा !

जैसे ' भाव ' अपना भाव जो अनन्त गुणरूप भाव है, वह अपनी अपेक्षा से सत्य है

और दूसरे जो अनन्त सिद्ध और उनका भाव केवलज्ञान आदि अन्दर गुणभाव, अपने भाव की अपेक्षा से वह अभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे यहाँ, ज्ञायकभाव की दृष्टि अन्दर करने से वह सत्यार्थ, वही है और पर्यायभेद जितना गति आदि का है, वह असत्यार्थ है — ऐसा है प्रभु! क्या हो बापू! मार्ग बहुत बदल गया है, प्रभु! क्या करें? आहाहा! भगवान का विरह पड़ा है, केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं, लोगों ने स्वच्छन्दता से मार्ग चलाया है। आहाहा!

श्रोता : भगवान की वाणी तो रह गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है? यह मार्ग रह गया है। अन्दर वस्तु... आहाहा! परन्तु उसको एकान्त मानते हैं।

श्रोता : मानने दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वह एकान्त ही है। यह आयेगा, सम्यक् एकान्त ही है, पाँचवें बोल में आयेगा। यह तो अभी दूसरा बोल चलता है। आहाहा! ये दो बोल हुए।

अब तीसरा बोल। **जैसे समुद्र का हानि-वृद्धिरूप अवस्था से....** ज्वारभाटा... तुम्हारी भाषा में क्या? बाढ़... बाढ़ कहलाती है न? वह वृद्धि अपेक्षा से और हानि अपेक्षा से। **अनुभव करने पर....** अर्थात् ज्ञान करने पर। **अनियतता (अनिश्चितता भूतार्थ है)...** वह है। ज्वारभाटा होता है, वह बाढ़ आती है, घट जाती है। वह पर्याय की अपेक्षा समुद्र में वह है। आहाहा! **तथापि नित्य-स्थिर समुद्रस्वभाव....** ध्रुवस्वभाव समुद्र एकरूप रहनेवाला। जिसमें ज्वार-बाढ़ और हानि नहीं है — ऐसे समुद्र की एकरूप चीज को देखने से... आहाहा! **अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है- झूठ है।** उस समुद्र में जो बाढ़ आती है और घट जाती है, वह सब झूठ है। त्रिकाल की अपेक्षा-समुद्र के सामान्य स्वभाव की अपेक्षा वह बाढ़ आदि है वह सब झूठ बात है। समझ में आया? अरे ऐसी बातें हैं।

इसी प्रकार.... यह तो दृष्टान्त हुआ, अब आत्मा में.... आहाहा! **आत्मा का हानिवृद्धिरूप पर्यायभेदों से अनुभव करने पर....** आहाहा! पर्याय में अनन्त गुण-पर्याय विशेष होती है और वह घट जाती है — ऐसा अक्षर के अनन्तवें भाग पर्याय निगोद

में हो जाती है; केवलज्ञान पर्याय सर्वज्ञ को होती है — ऐसे पर्यायभेदों से देखो, आहाहा! तो अनियतता है अवश्य, अनियत अर्थात् अनिश्चय वस्तु है अवश्य, पर्यायदृष्टि से (है अवश्य)। आहाहा!

अब **तथापि नित्य-स्थिर....** नित्य का अर्थ स्थिर; स्थिरबिम्ब, ध्रुवबिम्ब अनन्त गुणराशि का पिण्ड प्रभु आहाहा! उसके **स्थिर-निश्चल आत्मस्वभाव के समीप जाने पर....** निश्चल आत्मस्वभाव जो एकरूप (है), पर्याय में नहीं आता। हानिवृद्धिरूप जो पर्याय होती है, उसमें वह एकरूप द्रव्य नहीं आता। आहाहा! अक्षर के अनन्तवें भाग पर्याय हो तो भी द्रव्य तो पूर्ण ही पूर्ण ही पड़ा है और केवलज्ञान की पर्याय हो तो भी द्रव्य तो परिपूर्ण ही है। अतः इतनी पर्याय बाहर आयी तो वहाँ न्यूनाधिकता हो गयी है — ऐसा नहीं है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय एक समय की, वह भी एक समय की पर्याय है। पर्याय की अवधि ही एक समय है। द्रव्य और गुण की अवधि त्रिकाल है। आहाहा!

तो कहते हैं कि केवलज्ञान (में) तीन काल-तीन लोक को अपनी पर्याय में जानने में, वह जानने में आ जाता है। ऐसी वह पर्याय होने पर भी, द्रव्यस्वभाव में कुछ कमी हुई है — ऐसा नहीं है। इतनी पर्याय बाहर आयी और अन्दर कमी नहीं? बापू! यह कोई अलौकिक चीज है। आहाहा! वह पर्याय इतनी ताकतवाली बाहर आयी तो अन्दर में से कुछ हीनाधिकता होगी या नहीं? भगवान! मार्ग तो बहुत अलौकिक है, भाई! आहाहा!

वह द्रव्यस्वभाव एकरूप त्रिकाल है। एक है न? **नित्य स्थिर आत्मस्वभाव के समीप जाकर,....** नित्य स्थिर एकरूप है, चाहे तो केवलज्ञान हुआ हो और चाहे तो अक्षर के अनन्तवें भाग हो और चाहे तो चार ज्ञान और अवधिज्ञान आदि हो, परन्तु वह वस्तु तो उसमें आती नहीं। आहाहा! उस पर्याय में, जो त्रिकाली वस्तु है, वह नहीं आती। आहाहा! और त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय करना, उसकी दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन की गाथा है।

अभी तो कोई (ऐसा कहते हैं कि) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, नव तत्त्व के भेद की श्रद्धा करो (वह) समकित! अर...र...! बापू! तुझे पता नहीं, भाई! आहाहा! नव तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा का अनुभव तो मिथ्यात्व है। भेदवाली, हाँ! ऐसे नव तत्त्व तत्त्वार्थसूत्र

में कहे हैं, वहाँ तो एकवचन है, वहाँ बहुवचन नहीं हैं। तत्त्वार्थसूत्र में जीव-अजीव, आस्रव-बन्ध (संवर-निर्जरा) मोक्ष एक वचन है। यह नौ का एक वचन, यह अभेद होकर जानता है। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि पर्याय में हीनाधिक दशा... आहाहा ! अगुरुलघुत्व के कारण और पर्याय के धर्म के कारण (हीनाधिक दशा है)। पर्याय अधिक हो, सामान्य हो, थोड़ी हो, विशेष हो — ऐसे प्रकार हो पर्यायदृष्टि से (हों) परन्तु वस्तु की दृष्टि से देखो (तो) भगवान् एकरूप चैतन्यसूर्य भगवान् चैतन्यसमुद्र अन्दर पड़ा है। आहाहा ! जैसे, उस समुद्र में पर्याय की ज्वार-बाढ़-वृद्धि है नहीं, वैसे ही भगवान् में यह पर्याय-हीनाधिक की पर्याय अन्दर में है नहीं और हीनाधिक पर्याय में आत्मा आता नहीं — ऐसी बात है भाई ! आहाहा !

अरे ! ऐसा मनुष्यभव मिला और उसमें यदि यह नहीं किया तो प्रभु तेरा क्या होगा ? भाई ! आहाहा ! चौरासी लाख योनियों के अवतार... नाथ ! आहाहा ! यह दृष्टि का विषय -सम्यग्दर्शन के बिना यह (अवतार) हुआ, आहाहा ! यह सम्यग्दर्शन पर्याय को स्वीकार नहीं करता। सम्यग्दर्शन त्रिकाली ज्ञायकभाव को ही स्वीकार करता है। आहाहा ! समझ में आये ऐसा है प्रभु ! भाषा तो सादी है, भाव तो जो है, वह है। आहाहा !

कहते हैं कि पर्याय चाहे तो केवलज्ञान हो और चाहे तो मतिज्ञान-श्रुतज्ञान के अक्षर के अनन्तवें भाग हो... भेद की अपेक्षा से पर्याय की दृष्टि से पर्याय है, आहाहा ! वह तो जाननेयोग्य है इतना। अब आदर करनेयोग्य चीज क्या है ? आहाहा ! त्रिकाली एकरूप... केवलज्ञान की पर्याय भी आदरणीय नहीं है, वह सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। आहाहा ! अरे ! अरे ! केवलज्ञान निश्चयनय का विषय नहीं; निश्चयनय का विषय तो ध्रुव त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह उसका विषय है। पण्डितजी ! आहाहा !

और आहाहा ! उस पर्याय में द्रव्य कभी आया ही नहीं है। आहाहा ! ऐसा द्रव्यस्वभाव अस्खलित (स्वभाव है)। उस पर दृष्टि देने से, वह वस्तु सत्यार्थ हो गयी और उसकी अपेक्षा से पर्याय का भेद असत्यार्थ हो गया। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म है भगवान् ! क्या हो प्रभु ? तेरी लीला तो देख ! आहाहा ! पर्याय में अनेकपना होने पर भी, भगवान् ! तेरी एकरूप चीज है, वह कभी अनेक में नहीं आयी। आहाहा ! समझ में आया ? केवलज्ञान

की पर्याय में भी द्रव्य नहीं आता। सम्यग्दर्शन की पर्याय में, पूर्ण ज्ञायकभाव की प्रतीति और उसकी जितनी सामर्थ्य है, वह सब उस ज्ञानपर्याय में आता है परन्तु वह चीज पर्याय में नहीं आती। आहाहा!

जैसे अग्नि को देखने से अग्नि की उष्णता का ज्ञान यहाँ होता है परन्तु वह उष्णता यहाँ नहीं आती। समझ में आया? आहाहा! वैसे ही अपनी पर्याय में लोकालोक जानने पर भी पर्याय में लोकालोक नहीं आता — एक बात... और पर्याय में पूर्ण जानने की ताकत विकसित हुई तो उसमें द्रव्य नहीं आता। पर्याय में लोकालोक नहीं आता और पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आहाहा!

श्रोता : पर्याय अकेली लटकेगी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही समय की पर्याय... एक बार तो कहा था कि इस जगत् में एक समय की पर्याय, वही पूर्ण है बस! सम्पूर्ण द्रव्य-गुण को जानती है, अनन्त पर्याय को जानती है, लोकालोक-षट्द्रव्य की अस्ति है; इसलिए नहीं जानती (अपितु) उसका स्व पर-प्रकाशक (स्वभाव) होने से जानती है, एक समय की पर्याय में सारा सब आ गया। तथापि उसमें द्रव्य नहीं आया। द्रव्य का ज्ञान आया। आहाहा! ऐसी बात है भाई!

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं, सन्त उसी प्रकार जगत के समीप बात रखते हैं, प्रभु! आहाहा! भाई! तुझे कार्य बहुत करना पड़ता, अन्तर्मुख जहाँ सारी — पूर्ण चीज है, वहाँ तुझे दृष्टि करना पड़ेगी, प्रभु! आहाहा! तब तुझे तेरी प्रभुता की प्रतीति होगी। समझ में आया? पर्याय तो पामर है! आहाहा!

श्रोता : पामर होने पर (भी) जानने की शक्ति तो है न?

समाधान : जानने की शक्ति भले हो परन्तु वह (पर्याय) पामर है। स्वामी कार्तिकेय में तो ऐसा कहा है कि समकितदृष्टि को ज्ञान-दर्शन-चारित्र की पर्याय हुई, तथापि वह कहता है कि प्रभु! मेरी पर्याय तो केवलज्ञान की अपेक्षा से पामर है। स्वामी कार्तिकेय में मूल श्लोक है। समझ में आया?

श्रोता : वह पर्याय पूर्ण सामर्थ्यवान् तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी द्रव्य के समक्ष पामर है। आहाहा! क्योंकि एक-एक

गुण में ऐसी केवलज्ञान की पर्याय तो अनन्त... अनन्त... अनन्त पर्याय एक गुण में शक्तिरूप पड़ी है। आहाहा! और ऐसे जो अनन्त गुण हैं, अनन्त गुण का एकरूप प्रभु भगवान् द्रव्यस्वभाव (है), उसकी दृष्टि करने से वह सत्य है और पर्याय, वह दृष्टि का विषय नहीं; इसलिए वह असत्य है। आहाहा!

अब ऐसी बातें! इसमें क्या करना, क्या करना? — कुछ सूझ नहीं पड़ती — ऐसा कहते हैं। ऐसा कि ऐसा करना और वैसा करना... आहाहा! भाई! स्वसन्मुख होना, वह (कुछ) करना नहीं है? स्व अर्थात् परिपूर्ण भगवान् आत्मा... आहाहा! उसकी दृष्टि करने से — आत्मस्वभाव त्रिकाली के समीप जाकर... आहाहा! **समीप जाकर....** भाषा तो देखो!

टीका तो टीका है। आहाहा! भरतक्षेत्र में ऐसी टीका कोई है नहीं। आहाहा! गजब बात है! सर्वज्ञ अनुसारिणी... ऐसे शास्त्र की रचना हो गयी है। आहाहा! यह आत्मा.... इस टीका का नाम आत्मख्याति है न? इस टीका का नाम आत्मख्याति है, यह समयसार.... अतः आत्मख्याति अर्थात् प्रसिद्धि हुई।

स्वभाव त्रिकाल है, उसकी दृष्टि करने से आत्मा कैसा और कितना है? उसकी प्रसिद्धि श्रद्धा में आ गयी और ज्ञान की पर्याय में उसका ज्ञेय कितना है? — वह आ गया। आहाहा! इस राग की पर्याय में उसकी प्रसिद्धि नहीं आती। समझ में आया? राग स्वयं जड़ है, अचेतन है। उसमें ज्ञान के — चैतन्य के अंश का अभाव है। व्यवहाररत्नत्रय — चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो, चाहे तो पंच महाव्रत का परिणाम हो या शास्त्रज्ञान हो, विकल्पात्मक पर से पढ़ा (परलक्ष्यी ज्ञान) परन्तु राग, वह तो अचेतन है। बन्ध अधिकार में तो यहाँ तक कहा है कि जितना शास्त्रज्ञान है, पर का... वह शब्दज्ञान है। वह आत्मज्ञान नहीं — ऐसा लिया है। बन्ध अधिकार! वह ज्ञान शब्द का ज्ञान है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह शब्द है न? उसमें शब्द निमित्त थे न? और ज्ञान तो भले अपनी पर्याय में हुआ परन्तु वह शब्दज्ञान है, वह आत्मज्ञान नहीं। आहाहा!

बन्ध अधिकार में है। नव तत्त्व की श्रद्धा, वह नव तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा है, अपनी नहीं। आहाहा! है उसमें? और छहकाय की रक्षा का भाव वह छहकाय जीव है, वह पर है, तेरी चीज नहीं। आहाहा! ऐसा वहाँ — बन्ध अधिकार में लिया है। आहाहा!

यहाँ तो इससे आगे बढ़कर... आहाहा! पर्याय में जो गति आदि है, अनियतता है, पर्याय में हीनाधिक दशा होती है, वह सब... पर्याय की दृष्टि से पर्याय है परन्तु वस्तु की दृष्टि करने से, अनुभव करने पर, सम्यग्दर्शन के विषय का अनुभव करने पर वह सब उसके विषय में नहीं आता, इस अपेक्षा से अभूतार्थ है। समझ में आया? अब ऐसा उपदेश, अब इसमें किस प्रकार (समझना)? आहाहा! दूसरी तो ऐसी बातें होती हैं कि ऐसा करो — व्रत करो, दया पालो, भक्ति करो, राग करो...

श्रोता : राग करने का उपदेश....

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर बनाओ, गजरथ चलाओ.... ऐ...ई...! गोदिकाजी! यह पैसेवालों को तो ठीक दिखता है, कुछ पैसे से होता हो तो... बापू! कहीं नहीं भाई! यह पर की चीज कर नहीं सकता। मन्दिर बना नहीं सकता, गजरथ आत्मा चला नहीं सकता। रथ की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। उसमें भाव होता है वह शुभ हो, वह शुभराग बन्धन का कारण है। आहाहा!

श्रोता : आप प्रतिष्ठा तो कराते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कराता है? होती है। हमने तो कभी किसी से नहीं कहा कि यह करो; मन्दिर बनाओ, यह भी हमने तो कभी नहीं कहा। यह मकान भी बनाओ, हमने तो कभी नहीं कहा। स्वाध्याय मन्दिर बनता था तो कभी कहा नहीं कि यह बनाओ। मैंने तो ऐसा कहा था कि तुम बनाते हो परन्तु हमारी कोई विशेषता या वीतरागता बढ़ जाये तो हमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि हमें यहाँ रहना ही पड़ेगा। पहले से कहा था। हमने कभी कोई मकान बनाओ या ऐसा कुछ (नहीं कहा)। यहाँ करोड़ों रुपये का मकान हो गये हैं, अभी यहाँ.... कभी कहा नहीं। बनते हैं तो हम जानते हैं। है?

श्रोता : आपको इस मकान में रोक दिया, वीतरागता नहीं बढ़ने दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी ने नहीं रोका है।

श्रोता : पर पदार्थ रोकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? अपने राग में.... वीतरागता न हो उस

कारण से राग में रुक गया है, मकान के कारण नहीं — ऐसी बात है प्रभु! क्या हो? आहाहा! यहाँ अब यह कहा।

भगवान निश्चल स्थिर प्रभु पड़ा है एकरूप! आदि-अन्तरहित, अकृत्रिम-नहीं किया हुआ — चीज (है)। पर्याय तो कर्ता होती है और भोक्ता होती है, वह चीज नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुवभाव, अविचलभाव, अविनाशीभाव, नित्यभाव, ध्रुवभाव, एकरूप भाव, सदृशभाव, सामान्यभाव को देखने से, उसके समीप जाने से तुझे सम्यग्दर्शन होगा और समीप जाने से यह सब पर्याय अभूतार्थ दिखेगी, उसमें नहीं आती। आहाहा! समझ में आया? तीन बोल हुए — अबद्धस्पष्ट, अनन्य, नियत — तीन (बोल) हुए।

अब चौथा 'अविशेष', चौथा। जैसे सोने का,.... सोना... सोना... स्वर्ण, चिकनापन, पीलापन, भारीपन इत्यादि गुणरूप भेदों से.... इत्यादि गुणरूप भेदों से (अनुभव करने पर)... जानना करने पर, अनुभव अर्थात् ज्ञान करने पर। विशेषता भूतार्थ है (सत्यार्थ है).... उस सोने के जो अनेक चिकनापन आदि गुण हैं, वे विशेष से देखने से वे हैं, यह विशेष हुआ। गुणी के गुण का भेद विशेष हुआ। आहाहा! विशेष देखने से है परन्तु उसकी दृष्टि से सम्यग्दर्शन नहीं होता। यहाँ तो सोने की बात है। उसकी दृष्टि से सोना ख्याल में नहीं आता। समझ में आया? सोने के गुणभेद देखने से सोना ख्याल में नहीं आता। आहाहा!

तथापि.... तो भी जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं.... आहाहा! चिकना, पीलापन, और सब विलय हो गये हैं, अकेला सामान्य सोना (को देखने से) विशेष को न देखने से विशेष विलय हो गये हैं। जिसमें — सामान्य है नहीं। ऐसे सुवर्णस्वभाव के समीप जाकर अनुभव — ज्ञान करने पर विशेषता अभूतार्थ है (असत्यार्थ है).... वह सोने की विशेषता-चिकनापन आदि झूठ है। एकरूप सोने में वह भेद नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यह चौथा बोल जरा कठिन है।

इसी प्रकार आत्मा का, ज्ञान, दर्शन आदि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता है.... गुणभेद है, वह पर्यायनय का विषय है। व्यवहारनय का वह विषय है। आहाहा! तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं.... सर्व जो अव्यक्त में कहा है

कि चैतन्य सामान्य में, चैतन्य की विशेष व्यक्तियाँ सब अन्तर्गत हो गयीं, पूर्व की पर्याय अन्तर्गत हो गयी, वर्तमान पर्याय भिन्न बाहर रही तो उस वर्तमान पर्याय से देखने में भूत और भविष्य की पर्याय चैतन्यसामान्य में अन्दर में घुस गयी। जैसे जल की तरंग जल में डूबत है.... आता है न? यह तो पूर्णरूप है — ऐसे चैतन्य सामान्य में जितनी पर्याय हुई... एक समय की बाहर-व्यक्त रही, बाकी सब पूर्व-भविष्य और भूत की तो अन्तर प्रविष्ट हो गयी। वे गुण में अभेदरूप हो गयी। आहाहा!

जैसे, जो ज्ञान का क्षयोपशम है, वह पर्याय है। एक समय की अवस्था (है)। दूसरे समय में वह अवस्था अन्दर में चली गयी तो बाहर में तो वह क्षयोपशम दशा थी। अन्दर गयी वहाँ क्षयोपशम नहीं रही, पारिणामिकभाव हो गयी। आहाहा! यह क्या है यह? समझ में आया?

श्रोता : नष्ट हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नष्ट हो गयी परन्तु गयी कहाँ? नष्ट हुई किन्तु सत् थी न? वह कहीं असत् नहीं थी, परन्तु गयी कहाँ? वर्तमान में से गयी है परन्तु सामान्य में ऐसे गयी है।

श्रोता : बाहर नहीं रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पर्याय में नहीं है, अन्दर में है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

वह वर्तमान दशा — चाहे तो उदय की — राग-आदि हो, वह एक समय रहती है, दूसरे समय तो व्यय होता है। व्यय होकर कहाँ गयी? अस्ति है न, अस्ति थी न? उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् — अस्ति है। तीनों सत् है तो पर्याय भी उदय की थी, (वह) सत् थी। आहाहा! तत्त्वार्थसूत्र में तो उसे जीवतत्व कहा गया है। दूसरे अध्याय में (कहा है) राग आदि — दया, दान का विकल्प वह जीवतत्व है — ऐसा कहा है।

श्रोता : स्वतत्वं....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्वतत्त्व कहा है परन्तु एक समय में रहकर दूसरे समय में

चली जाती है। कहाँ? अन्दर में... परन्तु अन्दर में वह विकार नहीं चला जाता, किन्तु उसकी योग्यता अन्दर में चली जाती है — पारिणामिकभावरूप हो जाती है। आहाहा! गजब बात है भाई! समझ में आया?

इस प्रकार क्षयोपशमभाव की पर्याय एक समय की स्थिति है, दूसरे समय चली जाती है तो कहाँ जाती है? अन्दर में। तो अन्दर में क्षयोपशमभाव की पर्याय नहीं रही। अन्दर में गयी तो पारिणामिकभाव की दशा हो गयी। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार क्षायिक-केवलज्ञान की पर्याय एक समय रहती है, दूसरे समय व्यय होती है तो गयी कहाँ? अन्दर। यहाँ तो क्षायिकभाव की थी, अन्दर गयी वहाँ पारिणामिकभाव हो गया।

श्रोता : अन्दर में पर्यायरूप कहाँ रही, द्रव्यरूप हो गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायरूप नहीं, गुणरूप हो गयी।

श्रोता : पारिणामिकभाव में फेरफार हो जाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ फेरफार नहीं, निश्चय में तो फेरफार नहीं, व्यवहार से ऐसा कहने में आता है। पर्याय अन्दर से निकली और पर्याय अन्दर गयी, यह सब भेदनय से है। गजब है भाई! यह द्रव्य का स्वभाव अचिन्त्य है। आहाहा!

जैसे कहीं क्षेत्र का अन्त है? यह लोक तो असंख्य योजन में है, पीछे अलोक... आकाश कहाँ पूरा हुआ? पूरा हुआ तो पीछे क्या? भाई! कोई अलौकिक स्वभाव है, भाई! आहाहा!

श्रोता : कहीं तो अन्त होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं न कहीं अन्त है ही नहीं; इसलिए तो यह कहना है। आहाहा! अन्त है तो पीछे क्या? पीछे है या नहीं कुछ अन्त? भाई! यह तो अलौकिक बातें हैं बापू! आहा! एक नास्तिक व्यक्ति था, ठीक नहीं था, दीवान का लड़का था। मेरे पास आया तो पूछता था। मैंने कहा भाई! कहो, भले तुम्हें कोई बात न जँचे तो एक बात मैं ऐसी कहता हूँ कि यह क्षेत्र है क्षेत्र... कहाँ पूरा हुआ? विचार में तो लो, यह क्षेत्र कहाँ पूरा हुआ? आहाहा! चौदह ब्रह्माण्ड तो असंख्य योजन में पूरा हो गया, पीछे?

आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... आकाश... अनन्त को अनन्त गुणाकार करो तो भी उसका अन्त नहीं है। वह क्या चीज है? कोई क्षेत्र स्वभाव भी कोई अलौकिक है! ऐ...ई...! दीवान का लड़का...

श्रोता : केवलज्ञान अनन्त को जानता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त को अनन्तरूप से जानता है (अनन्त को) जाना इसलिए अन्त हो गया — ऐसा नहीं है। अनन्त को अनन्तरूप से जाना... जाना इसलिए वहाँ अन्त हो गया — ऐसा नहीं है। आहाहा! यह जैनदर्शन में (तात्कालिन साप्ताहिक समाचार पत्र) में कल बहुत गड़बड़ आयी है। सर्वज्ञ ने देखा वैसा होगा, तब तो नियत हो गया (— ऐसा उसमें लेख आया है)। अरे! सुन तो सही प्रभु! आहाहा! यह तो सर्वज्ञ की पर्याय का निश्चय करना (उसमें) स्वभावसन्मुख होकर अनन्त पुरुषार्थ है। आहाहा! पीछे देखा वैसा होगा... आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! यहाँ क्षेत्र का स्वभाव ऐसा ख्याल में.... आहाहा!

काल का स्वभाव? कहाँ से शुरू हुआ? द्रव्य की पर्याय कहाँ से शुरू — पहली पर्याय है? आहाहा! द्रव्य कहाँ से और पर्याय भी पहली पर्याय कौन सी? पहली नहीं है। अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... भाई! वस्तु का स्वरूप कोई अलौकिक है। वह तो जैनदर्शन ही जानता है, अन्य को तो पता नहीं है। आहाहा! तो उस काल की आदि नहीं है, क्षेत्र का अन्त नहीं है, काल का अन्त नहीं है, उससे भी अनन्त गुणा क्षेत्र का प्रदेश है। अनन्तगुणा धर्म आत्मा का, अनन्तगुणा का गुण तो उस गुण का अन्त नहीं की एक, दो, तीन, अनन्त..., यह अन्तिम आया — ऐसा है नहीं।

श्रोता : गुरुदेव! कोई कहता हो कि केवली भगवान का केवलज्ञान परिपूर्ण है तो पहली पर्याय कौन सी? वह तो जाने न?

समाधान : परन्तु पहली पर्याय है नहीं, यह तो कहा न? यह तो है ख्याल है, सब तर्क तो हमारे पास सब आये हैं। पहली पर्याय है नहीं तो पहली पर्याय को भगवान कहाँ

से देखेंगे ? अनादि की है, ऐसी अनादि की देखते हैं। कठिन बात है भाई !

श्रोता : अनुमान से देखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष देखते हैं, अनुमान कैसा ? भविष्य की पर्याय, भूत की पर्याय वर्तमान में नहीं है, तथापि भगवान तो प्रत्यक्ष देखते हैं। आहाहा ! बापू ! यह कोई अलौकिक बातें हैं ! सर्वज्ञ की पर्याय भविष्य में अनन्त काल बाद होगी, अभी है नहीं परन्तु वहाँ ज्ञान में है — ऐसी प्रत्यक्ष दिखती है।

श्रोता : है नहीं तो क्या देखे ?

समाधान : वह है नहीं, यह दिखता है। यह वहाँ — भविष्य में होनेवाली प्रत्यक्ष यहाँ दिखती है, बापू ! यह अलौकिक बातें ! भाई ! आहाहा !

यह क्षेत्र का स्वभाव, काल का स्वभाव, गुण का-अनन्त का स्वभाव कि कहीं तो अन्त होगा ? उसका — क्षेत्र का अन्त आया... अनन्त गुण है तो इतने क्षेत्र में है परन्तु उसकी-भाव की संख्या की कोई हद (मर्यादा) नहीं, आहाहा ! भाई ! वस्तु का स्वभाव ऐसा है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ यह कहते हैं कि इतने गुण हैं, भेद — अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... वह तो भेद की दृष्टि से गुण भले हो, है ? आत्मा का ज्ञान-दर्शन आदि अर्थात् अनन्त, गुणरूप भेद, गुणी में गुणरूप भेद... आहाहा ! अनुभव अर्थात् ज्ञान करने पर विशेषता तो है, भेद है, पर्यायनय का विषय गुणभेद है, गुणी का गुणभेद है। आहाहा ! गजब बात है भाई !

तथापि.... ऐसा होने पर भी जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं.... द्रव्यस्वभाव में गुणभेद विलय हो गया है। अन्दर में भेद रहता ही नहीं। आहाहा ! गुणभेद की दृष्टि भी पर्यायनय का विषय है। आहाहा ! और इतना मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा होने पर भी, अनन्त गुणरूप भाव सत्यार्थ — पर्यायदृष्टि से सत्यार्थ होने पर भी, आहाहा ! अरे ! उसकी पर्याय लो... एक समय की अनन्त गुण की यह पर्याय अनन्त है। उसमें यह पर्याय अनन्त की अन्तिम है, यह कहाँ आया ? क्या कहा ? आत्मा में जो अनन्त गुण हैं — अपार... अपार... अपार... पार नहीं — जैसे क्षेत्र का पार नहीं, काल का पार नहीं, भाव

की संख्या का पार नहीं, इतनी सब पर्याय है; जितने गुण हैं, उतनी पर्याय है तो उन अनन्त पर्यायों में यह अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... और यह अन्तिम / आखिर की पर्याय है — कहाँ आया उसमें? एक समय की पर्याय अनन्त है, उसमें यह पर्याय आखिर की, आखिर की, आखिर की है और यह सब अनन्त... अनन्त है, कहाँ आया उसमें? आहाहा! पाटनीजी! ऐसा मार्ग है प्रभु का, भाई! आहाहा! ऐसे गुणभेद....

श्रोता : स्पष्टीकरण तो बहुत हो गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है! वस्तु तो ऐसी है भाई! वह किसी ने की नहीं है, कोई कर्ता नहीं है, इस चौदह ब्रह्माण्ड का। सत् है, उसको कर्ता कैसे? है उसका कर्ता कैसे? न हो उसका कर्ता कैसे? आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि गुणभेद से देखने पर है, तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं — ऐसे आत्मस्वभाव के समीप-एकरूप गुण, द्रव्यस्वभाव! जिसमें गुण-भेद भी नहीं। आहाहा! गुणभेद भी पर्यायदृष्टि का विषय है, द्रव्यदृष्टि का विषय गुणभेद है ही नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय, एकरूप द्रव्यस्वभाव (है); उसका विषय गुणभेद नहीं है। आहाहा! भाई! सम्यग्दर्शन की सामर्थ्य कितनी? वह क्या कहें? आहाहा!

अनन्त-अनन्त गुणभेद होने पर भी, वस्तु के स्वभाव को देखो तो वह गुणभेद नाश हो गया, भेद है नहीं। ऐसी दृष्टि... उसकी दृष्टि करना। आहाहा! उस दृष्टि में सामर्थ्य कितना, प्रभु? आहाहा! अकेला अभेद अनन्त गुण का एकरूप उसका (स्वभाव का) ज्ञान हुआ पर्याय में और श्रद्धा में उसकी प्रतीति हुई। समझ में आया? बापू! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! यहाँ तो अभी यह माना, यह माना सम्यग्दर्शन। अरे प्रभु! सुन तो सही बापू! सम्यग्दर्शन हुआ तो उसके भव का अन्त हो गया। आहाहा!

यह प्रभु तो मुक्तस्वरूप... अबद्ध में आया न? अबद्ध अर्थात् मुक्त; बद्ध नहीं कहो या मुक्त कहो, वह तो मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मस्वभाव की दृष्टि करने से वे गुणभेद अभूतार्थ हैं। आहाहा!

अरे! चैतन्य चमत्कार वस्तु है। भाई! एक क्षेत्र का चमत्कार देखो, कहीं अन्त नहीं!

क्या है ? यह ख्याल में लेना इसे मुश्किल है। काल का अन्त नहीं, पर्याय का अन्त नहीं की यह पहली पर्याय ! क्या है प्रभु ? गुण का अन्त नहीं — अनन्त... अनन्त... भाव कि यह अनन्त में अनन्त में अनन्त में अनन्त में अन्तिम का यह भाव — ऐसा है नहीं। आहाहा ! ऐसा द्रव्यस्वभाव जो है, उसके समीप जाने पर, आहाहा ! भेददृष्टि को छोड़कर, भगवान पूर्णानन्द के नाथ के समीप जाने पर, यह समीप जाने पर जो सम्यग्दर्शन हुआ, प्रभु ! उसमें कितनी ताकत है ? आहाहा ! कि सम्पूर्ण आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का एक पिण्ड उसे जिसने प्रतीति में लिया। प्रतीति में लिया, वस्तु आयी नहीं उसमें। आहाहा !

श्रोता : सुनने को मिलता है, वही अहोभाग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु ऐसी है, बापू ! क्या कहे ? अरे ! भगवान के श्रीमुख से तो निकली हुई यह बात है। आहाहा ! समझ में आया ? इसके लिए निवृत्ति लेकर वाँचन आदि विचार (आदि) करके निर्णय करना पड़ेगा प्रभु ! यह ऐसे नहीं मिल सकता। आहाहा ! इस पैसे के लिये भी देश छोड़कर परदेश में भटकता है, वहाँ स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, कुटुम्ब नहीं, कोई न हो... वह तो फिर मुम्बई में घर हो जाये तो वहाँ सब हो, यह अब इंग्लैण्ड जाता हो तो वहाँ साथ कौन होगा ? इसके साथ कौन होगा ? पूनमचन्दजी के साथ वहाँ भटकने में कोई है ? दूसरा कोई साथ भटकेगा ? यहाँ तो दूसरा कहना है कि पैसे के लिए देश और कुटुम्ब को छोड़कर भी वहाँ जाता है तो आत्मा को पर्याय छोड़कर द्रव्य में जाना है। आहाहा ! विशेष कहेंगे। समय हो गया, लो ! (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)